REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 3.8014(UIF)
VOLUME - 6 | ISSUE - 6 | MARCH - 2017

मध्यकालीन भारत में स्थापत्य एवं मूर्तिकलाः एक समीक्षात्मक विश्लेषण

मानसी कुमारी
एम० ए० (इतिहास), नालंदा खुला विश्वविद्यालय, पटना

सारांश :

पूर्व मध्ययुग में कला और स्थापत्य के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण विकास हुए। कश्मीर, राजस्थान तथा ओडिशा सहित अन्य क्षेत्रों में स्थापत्य और मूर्तिकला की विशिष्ट क्षेत्रीय शैलियां विकसित हुई। प्रायद्विपीय भारत में राष्ट्रकूट, पश्चिमी चालुक्य, पल्लव, होयसल तथा चोलों के संरक्षण मे विशाल स्तर पर निर्माण कार्य देखा गया। पूर्व की शताब्दियों से भिन्न, जब अधिकांश स्थापत्य सम्बंधी अवशेषों की प्रकृति बौद्ध थी, इस काल में हिंदू मंदिरों का निर्माण कार्य कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया।

शिल्पशास्त्रों (वास्तु और स्थापत्य पर लिखे ग्रंथ) की पर्याप्त संरचना पूर्व मध्य युग में की गई है। (प्राचीन तथा पूर्व मध्ययुगीन संरचनाओं में विशेषकर प्रतोलि,) गोपुर तथा तोरण के संदर्भ में, शास्त्र और प्रयोग के बीच वास्तविक सम्बन्ध को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है,

इनमे तीन मुख्य मंदिरों में स्थापत्य शैलियों का वर्णन मिलता है– नागर, द्राविड़ तथा वेसर। हिमालय से विन्ध्य के बीच की भूमि नागर शैली की है कृष्णा तथा काबेरी नदियों के बीच की भूमि द्राविड़ शैली की उत्कर्ष भूमि है, जबकि बेसर शैली का क्षेत्र विन्ध्य से कृष्णा नदी के बीच का है। मंदिर शैलियों का अध्ययन तत्कालीन मंदिरों के विद्यमानों अवशेषों के अध्ययन द्वारा किया जा सकता है।

शब्द संकेतः– स्थापत्य, मूर्त्तिकला, संरचना बौद्ध, मंदिर

प्रस्तावना

भारतीय स्थापत्य कला में मंदिरों की तीन शैलियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उत्तरी भारत में हिमालय से विंध्य तक 'नागर' शैली प्रचलित रही। विध्य से कृष्णा नदी तक एक निश्चित प्रकार की वेसर शैली तथा कृष्णा के दक्षिण में कन्याकुमारी तक द्राविड़ शैली का विकास हुआ। लोक जीवन में ये तीनों शैलियाँ इतनी अधिक रमी रही हैं कि आज भी इन तीनों शैलियों के विविध प्रकार के उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं।

गुप्तकाल का दशावतार मंदिर (देवगढ़ झाँसी) नागर शैली का प्रारंभिक उदाहरण है। नाचना कुठारा के महादेव मंदिर भी इसी प्रकार के हैं। इसका एक विशिष्ट शैली के रूप में आठवीं शताब्दी तक अच्छी तरह विकास हो चुका था।

इस काल में मूर्तिकला की अपेक्षा स्थापत्य का ही अधिक विकास हुआ। मूर्तियाँ पत्थर, काठ, विभिन्न प्रकार की धातुओं में उत्कीर्ण की जाती थी। इन मूर्तियों को देखकर ऐसा लगता स्वाभाविक है कि गुप्तकालीन मूर्तिकला की असाधारण रूप से उत्कृष्ट विशेषताएँ इस काल की मूर्तियों में नही हैं।

अधिकांश मूर्तियाँ देवी–देवताओं की होने के कारण शास्त्रीय मानदंडों के अनुसार बनाई जाती थी। इससे मूर्तियों में एकरसता ही मिलती है। यह स्वाभाविक था कि शास्त्रीय नियमों के पालन से कलाकार की प्रतिभा का मुक्त प्रदर्शन कुछ सीमा तक अवरूद्ध होता। किंतु देवी–देवताओं की मूर्तिया पूजा के लिए बनती थी अतः उनमें एक प्रकार की गरिमा का नियोजन आवश्यक था।

स्थापत्य एवं मूर्तिकला की पृष्ठभूमिः–

उत्कृष्ठ बौद्ध और जैन गुफाओं के अतिरिक्त एलोरा गुफाओं को भव्य कैलाशनाथ मंदिर के कारण भी जाना जाता है। इस शिव मंदिर को राष्ट्रकूटों के संरक्षण में पथरीली पहाड़ों को तराश कर 8वीं शताब्दी में बनाया गया था। वास्तव में, यह मंदिर एकाधिक संरचनाओं का एकसमुच्च कहा जा सकता है, जिनमें मुख्य मंदिर की निचली और ऊपरी मंजिले हैं, एक नदी मंडप है, उप–मंदिरों का समूह है, दीवारें, प्रवेश द्वार और मठ के समान संरचनाएं हैं। मंदिर को बाह्य संरचना द्राविड़ शैली की कहीं जा सकती है। प्रायः इन मंदिरों की संपूर्ण सतहों पर उत्कृष्ट प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गई है। ये शैव प्रतिमाएं हैं, लेकिन विष्णु की प्रतिमाओं को भी स्थान मिला है। दरअसल, प्रवेश द्वारा के बाई ओर की सभी प्रतिमाएं शैव है, जबकि दाई ओर की प्रतिमाएं वैष्णव है। इसी प्रकार की प्रतिमाशास्त्रीय योजना मंदिर के चारों ओर बने गलियारे की पृष्ठ दीवारों पर देखी जा सकती है। प्रतिमाशास्त्रीय निरूपण में शिव, शिव और पार्वती, कैलाश पर्वत को हिलाता रावण, दुर्गा, सप्त–मातृकाएं, गणेश, तथा गंगा, यमुना और सरस्वती देवियों को भी स्थान मिलता है। वस्तुतः कैलाशनाथ मंदिर को उपमहाद्वीप के गुफा स्थापत्य का चरमोत्कर्ष कहा जाता है।

दक्कन में, कर्नाटक के कई स्थानों पर मंदिरों के गुफा स्थापत्य और स्वतंत्र संरचनाओं के पूर्व मध्य युगीन उदाहरण मिलते हैं। बादामी और ऐहोले, प्रारंभिक स्थापत्य काल (छठी से आठवीं सदी के शुरूआती वर्षो तक) का प्रतिनिधित्व करते हैं स्थापत्य काल में दूसरे और अपेक्षाकृत भव्य चरण का प्रतिनिधित्व 8वीं सदी में पट्टदकल में बने मंदिरों के द्वारा होता है। बादामी, पश्चिम चालुक्यों की राजधानी वाटापी थी। दक्कन के मंदिर स्थापत्य में उत्तर और दक्षिण दोनों की स्थापत्य विशिष्टताएं दिखलाई पड़ती हैं, किंतु इन शताब्दियों में दक्कन के स्थापत्य का अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी तैयार हो गया।

इस काल के मंदिरों की संरचनाएं मुख्य रूप से पत्थरों के विशाल ब्लॉक जोड़कर बने हैं तथा खल्ली का इनमें प्रयोग नहीं हुआ है। अतः दीवारों और छतों को अलंकृत किया गया है। सभी प्रमुख मंदिर ऐहोले में अवस्थित हैं। मेगुटी मंदिल का पहले उल्लेख किया जा चुका है, जिसमें पुलकेशिन–II का प्रसिद्ध अभिलेख पाया गया था। ऐहोले के अधिकतर मंदिर हिंदुओं के हैं तथा इनकी योजनाओं में काफी विविधता देखी जा सकती है। इनमें गजपृष्ठीय दुर्गा मंदिर भी हैं, जिसकी विस्तृत चर्चा पहले की जा चुकी है। जबकि लड़खान मंदिर में स्तंभों वाला आंगन है, जो दो सकेंद्रीय वर्गो में व्यवस्थित है, जिनके अंत में मंदिर का छोटा भाग है। महाकुट बादामी से अधिक दूरी पर स्थित नहीं है। यहां प्रारंभिक चालुक्य काल के कोई 20 मंदिर है, जिनमें से प्रायः सभी के साथ उत्तर की शैली में बने वक्ररेखीय शिखरों को देखा जा सकता है।

पल्लव राज्य

दक्षिण भारत में प्रस्तरीय स्थापत्य का इतिहास 7वीं शताब्दी के भक्ति की बढ़ती लोकप्रियता से जुड़ा हुआ है। पल्लव शासक विशेषकर महेन्द्रवर्मन। (600–625), नरसिंहवर्मन–। (625–670) तथा नरसिंहवर्म–IIराजसिंह (700–728), कला के महान संरक्षक थे। पल्लव कालीन स्थापत्य के अधिकांश अवशेष मामल्लपुरम और कांचीपुरम में मिलते हैं। (माइस्टर और ढाकी, 1983: 23–80)। इनमें गुफा मंदिर, एक ही चट्टान को तराश कर बनाए गए मंदिर और स्वतंत्र रूप से खड़े मंदिर शामिल हैं। पल्लव मूर्तिकला की अपनी विशेषताएं हैं, जो गुप्तकालीन उत्तर–भारत की मूर्तिकला से भिन्न है। मानव आकृतियों के चेहरे गोलाकार हैं और ठुड्डियां ऊंची हैं, शरीर पतले और अंग क्रमशः पतले बनाए गए हैं।

पल्लवों के गुफा मंदिर, योजना की दृष्टि से अजन्ता और एलोरा की अपेक्षा छोटे और कम जटिल है। अपेक्षाकृत समतल गुफा मंदिर, मंडगापटटु का लक्षितायतन मंदिर, तिरूचिरपल्ली की ललितांकुर गुफा मंदिर तथा मामल्लपुरम (या महाबली पुरम) की कुछ गुफा मंदिरों में देखने को मिलता है। इन गुफा मंदिरों के विशाल स्तंभ निचले और ऊपरी हिस्से में वर्गाकार हैं तथा तिरछे कोनों वाले षट्कोणीय आकार स्तंभ के मध्य में है। गुफाओं के मुख्य द्वार अलंकृत नहीं हैं, उनके दोनों सिरों पर द्वारपाल बने हैं। बड़ी गुफाओं में गर्माहट तक पहुंचने वाले मार्ग में स्तंभ तराशे गए हैं, जिन पर द्वारपाल और द्वारपालिकाएं उद्भृत हैं। गर्भगृह में शिवलिंग अथवा शिव, विष्णु या ब्रह्मा की प्रतिमाएं हैं, इनकी तथा अन्य देवताओं की प्रतिमाएं कक्ष की दीवारों पर बनी हैं। कोष्ठकों में भी अलंकरण किया गया है, जैसे तिरूचिरपल्ली गुफा की, गंगा को सिर पर ग्रहण करते शिव की कोष्ठक प्रतिमा असाध कारण है।

पल्लव काल की श्रेष्ठ संरचनाएं माल्लपुरम के बंदरगाह नगर में देखी जा सकती है, जिस नगर का नाम पल्लव शासन नरसिंह। के नाम पर रखा गया है, जो मामल्ल (महानायक) के रूप में विख्यात था। इन गुफाओं के स्तंभ अपेक्षाकृत पतले हैं। इनमें अनेक आकारों के अर्धस्तभ भी बने है। कभी पतले और गोलाकार, कुशन आकार वाले शीर्ष–स्तंभ और बैठे सिंह की आकृति के आधार भी इनमें देखे जा सकते हैं। कुछ गुफाओं जैसे आदिवराह गुफा मंदिर के सामने तालाब है। मामल्लपुरम के चट्टानों को काटकर निर्मित गुफाओं के कोष्ठकों म पौराणिक गाथाओं के दृश्य उत्कीर्ण हैं। धरती का उद्धार करते विष्णु, के तीन डग, गज–लक्ष्मी और दुर्गा (आदि–वराह गुफा में), दुर्गा गुफा में महिषासुरमर्दिनी, गोवर्द्धन पर्वत उठाते कृष्ण (पंच–पांडव गुफा में) जैसे दृश्य बनाए गए थे। दक्कन की नक्काशी की तुलना में पल्लव गुफा मंदिरों की नक्काशी कुछ छिछली है। मुख्य आकृतियां छरहरी, बारीक और सौम्य प्रतीत होती हैं। उनकी केशसज्जा तथा मुकुट सादगीपूर्ण हैं, तथा इनको कम गहने पहनाए गए हैं, या आभूषण नहीं भी हैं।

इस काल की अन्यतम आकृतियां मामल्लपुरम की स्वतंत्र रूप से खड़ी 15 मीटर ऊंची और 30 मीटर लंबी, दो शिलाखंडों पर उत्कीर्ण आकृतियां हैं। चट्टान की सतह पर बनी इन आकृतियों में मानवाकृतियां, हाथियों जैसे पशुओं की आकृतियां प्रायः अपने वास्तविक आकार में है। विशेष अवसरों पर संभवतः शीर्ष तक नलिकाओं के माध्यम से जल पहुंचता था, जहां प्राकृतिक ढलान बना है, यहां नाग और नागिनी की आकृतियों भी बनी हैं। इन आकृतियों के विषय की वस्तु की दो प्रकार से व्याख्या की गई है– गंगा के अवरोह और अर्जुन के तपस्या के रूप में। अर्जुन की यह कथा महाभारत का हिस्सा है तथा किरातार्जुनीय की कथा वस्तु। इस कथा के अनुसार, अर्जुन ने

शिव से शस्त्र पाने के लिए कठिन तप किया। असुरों के द्वारा उन्हें मारने के लिए एक वराह भेजा गया। शिव ने अर्जुन की रक्षा के लिए किरात (शिकारी) के भेष में हस्तक्षेप किया। दोनों ने ही वराह को मार देने का दावा किया। शिव इस संघर्ष को जीते और अर्जुन को अपना वास्तविक रूप दिखलाया। जहां अधिकांश पल्लव मंदिर कांचीपुरम के आस–पास के इलाके में केंद्रित हैं, वही अधिकांश चोल मंदिर इसके दक्षिण में तंजोर के इलाके में स्थित हैं (हंटिंगटन, 1985ः 509–39ः माइस्टर एवं ढाकी, 1983ः223–64, 289–330)। इनके मंदिर स्थापत्य के विकास के विषय में यह सरलता से नही कहा जा सकता है कि वे पल्लव मंदिर स्थापत्य की अगली कड़ी हैं, क्योंकि इनमें अत्यधिक नूतन परिवर्तन हुए। अभिलेखों से पता चलता है कि पल्लवकाल के ईट के बने कई मंदिरों को इस काल में पत्थरों से पुनर्निमित किया गया। राजवंशीय शिनाख्तों के आधार पर चोल स्थापत्य को कम से कम दो स्पष्ट काल में विभाजित किया जा सकता है। प्रारंभिक स्थापत्य काल (9वी सदी के मध्य से 11वीं सदी की शुरूआत तक) और उत्तर स्थापत्य काल (प्रारंभिक 11वीं सदी से 13वं सदी तक) कुछ काल इतिहासकाल चोल स्थापत्य को तीन कालो में बांटना पसंद करते हैं– प्रारंभिक (850–985), मध्य (985–1070) तथा उत्तरकाल (1070–1270) तथा पुनः इन कालों को उप–कालों में विभाजित करते हैं।

प्राचीनतम चरण का प्रतिनिधित्व नात्र्तामलई का शिव मंदिर करता है, जिसका निर्माण 9वीं सदी के मध्य में चोल विजयालय अथवा किसी मुत्त्रईयर मुखिया ने कराया था। इस मंदिर में विमान (गर्भगृह और उसके ऊपर की संरचना), एक अर्धमंडप (गर्भगृह के सामने का कक्ष) से जुड़ा है। अर्धमंडप में स्तंभों की दो कतारें है। मुख्य मंदिर चारों ओर से छह उपमंदिरों से घिरा हुआ है। (मूलरूप से इनकी संख्या आठ रही होगी), जिन्हें परिवाराथालय कहते हैं। गर्भगृह, गोलाकार है और इसमें लिंग तथा योनि है। बाहरी दीवारों की सतह पर नक्काशी कम हैं, किंतु पश्चिमी प्रवेशद्वार पर दो द्वारपाल बने हैं। दीवारों में भिति–स्तंभ बने हैं, किंतु दीवारों पर देवताओं के दृश्य उत्कीर्ण नहीं हैं, जो बाद के चोल मंदिरों की विशेषता बनी।

चोल मंदिर स्थापत्य का दूसरा चरण, आदित्य–। (871–907 सा. सं.) और परांतक–I (907–55 सा. सं.) के काल को कह सकते हैं, जिसमें पुलमंगई का ब्रह्मपुरेश्वर मंदिर, कुम्बकोनम का नागेश्वरस्वामी मंदिर तथा श्री वासनल्लुर का गोरंगनाथ मंदिर बने थें ब्रह्मपुरेश्वर मंदिर में भी विमान अर्धमंडप से जुड़ा है। बाद में एक मुखमंडप (या द्वार मंडप) जोड़ा गया। मंदिर का निर्माण पत्थर से ढके एक छिछले गड्ढे में हुआ था, जिसमें कभी पानी भरा रहा होगा। बाहरी दीवारों के निचले हिस्से में बने उल्टे कमल, इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। मंदिर के आधार के पास उत्कीर्ण सिंहों की उत्कीर्ण प्रतिमाएं, चोल मंदिरों की विशेषता है। दीवारों पर स्थित भिति स्तंभों के कारण तारवों तैसी आकृति बनी है, जिन्हें देवकोष्ठ कहा जाता है, जिनमें गणेश, दुर्गा महिषासुरमर्दिनी तथा ब्रह्म जैसे देवताओं की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। ये आकृतियां छरहरी और स्वाभाविक हैं, इनके मुकुट ऊंचे हैं और बाहरी दीवारों पर देवताओं और पौराणिक दृश्यों का प्रदर्शन हुआ है, जिनमें रामायण से भी कई दृश्य लिए गए हैं।

चोल मंदिर स्थापत्य का तीसरा चरण शेम्बियन महादेवी (एक रानी जिसने अपने पति गण्डादित्य (949–57) तथा अपने पुत्र उत्तम–I (969–89) के राज्यकालों में मंदिर स्थापत्य क्षेत्र की गतिविधियों को महत्त्वपूर्ण संरक्षण दिया तथा राजराज–I के शासन काल के शुरूआती दौरे को कहा जा सकता है। पूर्व के ईट से बने मंदिरों का इस काल में पत्थरों से पुननिर्माण का कार्य, बड़े स्तर पर किया गया। इस काल का मुख्य परिवर्तन उत्कीर्ण प्रतिमाओं के

क्षेत्र में कहा जा सकता है, जो अब अधिक भावशूय और आकड़े हुए बनने लगे। अनंगपुर का अगस्त्येश्वर मंदिर, शेम्बियन महादेवी द्वारा बनाए गए एक मंदिर में एक है।

चोल मंदिर स्थापत्य का उत्कर्ष, तंजावुर के बृहदीश्वर (या राजराजेश्वर मंदिर) में देखा जा सकता है। इसका विमान 60 मीटर लंबा है तथा इसके शिखर अत्यंत विशाल हैं। इस शिव मंदिर को अपने काल का सबसे भव्य मंदिर कहा जा सकता है, जिसमें स्थापत्य की कई नई विशेषताएं दिखलाई पड़ती हैं। मुख्य मंदिर में स्तम्भयुक्त बाह्यमंडप या डयोढ़ी, स्तंभयुक्त मुखमंडप और अर्धमंडप, एक अंतराल तथा गर्भगृह हैं। पहले के किसी भी मंदिर की तुलना में नक्काशी अधिक सघन और उत्कृष्ट है। उत्कीर्ण आकृतियों को गोलाकार कोष्ठों में बनाया गया है, निचले हिस्से के कोष्ठकों में शिव से जुड़े विभिन्न रूपों का प्रदर्शन हैं, जिनमें नटराज भी शामिल हैं। ऊपरी हिस्से में शिव के त्रिपुरांतक (तीन नगरों का संहार करने वाले) रूप के 30 प्रतिनिधि दृश्य हैं। गर्भगृह के चारो ओर बने प्रदिक्षणापथ की दीवारों पर शिव की तीन विशाल प्रतिमाएं तथा अनेक चित्रित दृश्य उपस्थित है। मंदिर के सामने प्रायः 6 मी. लंबे नंदी बैल की स्थापित प्रतिमा का एक ही चट्टान को काट कर बनाया गया है, इसे घेरा बाद में गया है। यह मंदिर एक विशाल आयताकार चाहरदीवारी के भीतर हैं,जिसके पूर्वी हिस्से में दो विशाल गोपुर हैं। गोपुरों का निचला हिस्सा पतथर का है, जबकि ऊपी हिस्से ईट के बने हैं। गोपुरों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएं भी, पहले के मंदिरों की तुलना में अधिक है।

राजेन्द्र–I (राजराज का पुत्र) ने अपनी नई राजधानी गंगईकोण्डचोलपुरम में भी बृहदीश्वर नाम के मंदिर का निर्माण किया। यह पूरा नहीं हो सका और आज जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। फिर भी बचे हुए, अवशेष यही बतलाते हैं कि तंजोर के बृहदीश्वर मंदिर की तुलना में इसकी कारीगरी काफी फीकी रही होगी। गंगईकोण्डचोलपुरम मंदिर का विमान कम ऊंचा है, इसके शिखर भीतर की ओर मुड़े हैं, तथा इसकी दीवारों से अधिक अलंकरण देखा जा सकता है।

चोल मंदिर, स्थापत्य का अंतिम चरण 12वीं–13वीं शताब्दियों का था। इस चरण में विमान की तुलना में गोपुर अधिक महत्वपूर्ण हो गए। चिदम्बरम के शिव मंदिर में इस तथ्य को अवलोकन किया जा सकता है जिसका अधिकांश निर्माणकार्य कुलोतुंग–I (1070–1122) तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में हुआ। मंदिर की बाहरी दीवारों से पहिए और घोड़ों की आकृतियां जोड़ी गई हैं, जो इसे रथाकार स्वरूप देता है।

चोल कालीन धातु मूर्तिकला

चोल कालीन धातु मूर्तिकला अपने सौंदर्य बौध और तकनीकी श्रेष्ठता के लिए विख्यात है। तंजावुर इस कोटि की मूर्तिकला के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उत्तर भारत की धात्विक मूर्तियां भीतर से खोखली होती थी, लेकिन दक्षिण भ्झारत को धात्विक मूर्तियां ठोस होती थी। हालांकि, दोनों के निर्माण में पिघले हुए मोम (लॉस्ट वैक्स) की तकनीक का उपयोग किया जाता था। परंपरागत रूप से उत्तर भारतीय प्रतिमाएं, अष्टधातु (स्वर्ण, रजत, टिन, लीड, लौह, पारा, जिस्ता तथा तांबा) की बनती थी, किंतु वास्तविक प्रतिमाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक बार इस सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है। प्रतिमाशास्त्रीय तथा अन्य शैलीगत विशेषताओ के आधार पर धातु की प्रतिमाएं, प्रस्तरीय प्रतिमाओं के सदृश्य थीं। ये प्रतिमाएं सामान्यतः परिधानयुक्त और आभूषणों से सुसज्जित होती थीं और मंदिर के अनुष्ठानिक संभाग का ही हिस्सा होती थीं। दक्षिण भारत की ऐसी अनेक

मूर्तियों को धार्मिक शोभा यात्राओं में निकाला जाता था। चोल धातु प्रतिमाओं में नटराज शिव की प्रतिमाएं सबसे लोकप्रिय प्रतीत होती हैं। (शिवराममूर्ति (1974)1994) ने भारतीय कला और साहित्य नटराज के महत्त्व का विस्तृत अध्ययन किया है। अन्य लोकप्रिय प्रतीकों में कृष्ण और आलवार एवं नायनमार संत आते हैं।

दक्षिण भारत के कई शिव मंदिरों में नटराज की प्रतिमा की स्थापना के लिए नटन–सभा हुआ करती थी। चिदम्बरम का मंदिर भी एक ऐसा ही उदाहरण है। नृत्य करते शिव की दो प्रवृत्ति है– रौद्र और शांत। शिव का ताण्डव नृत्य ब्रह्मांड के चक्रवत सृजन और विनाश का प्रतीक है। इसके ततवों को अनेक व्याख्याएं उपलब्ध हैं। आनंद ताण्डव की मुद्रा में शिव चार भुजाओं के साथ होते हैं। सर्प उनका आभूषण होता है। ऊपर का दायां हाथ, दंड–हस्त या गज–हस्त मुद्रा कहलाता है। पिछले बाएं हाथ में वह ज्वाला की लपट को, पिछले दाएं हाथ में डमरू को तथा सामने वाला दायां हाथ मोक्षदायिनी अभयमुद्रा में होता था। डमरू सृजन का प्रतीक है, अग्नि संहार का। राज–हस्त मुद्रावाला हाथ उनके उठे हुए पांव की ओर इंगित करता हैं, जहां इस संसार को आश्रय मिलेगा। शिव का बायां पैर इनके शरीर को काटते हुए मुड़ा होता है। वह सामान्यतः मूयलक, नाम के एक बौने पर चढ़कर नृत्य करते हैं, जो अज्ञान और खल का प्रतीक है। भगवान की जटाएं, जो गंगा को धारण करती हैं, बाहर की ओर अग्नि की नेमि के समान लहराता है। दक्षिण भारत के नटराज की ये विशेषताएं उपमहाद्वीप के अन्य हिस्सों म पाई गई नृत्य करते शिव की उतनी ही प्रभावशाली प्रतिमाओं से भिन्न है, जैसा कि एलोरा या बादामी जैसे स्थानों से प्राप्त हो सकीं। ऐसा चट्टानों की अल्प तनाव क्षमता (तन्यता) के कारण कठिन था (धातु की तुलना में), जैसे नृत्य करते हुए शिव के उठे हुए बाएं हाथ को बनाना पत्थर को काटकर प्रतिमा बनाने वाले शिल्पकारों के लिए कठिन था।

मूर्तिकारों ने शिव हो सकीं। ऐसा चट्टानों की अल्प तनाव क्षमता (तन्यता) के कारण कठिन था। (धातु की तुलना में), जैसे नृत्य करते हुए शिव के उठे हुए बाएं हाथ को बनाना पत्थर को काटकर प्रतिमा बनाने वाले शिल्पकारों के लिए कठिन था।

मूर्तिकारों ने शिव के चमत्तकारी नृत्य भंगिमाओं को पत्थर तथा धातु की प्रतिमाओं में उतारा है, जैसा कि कवियों इस नृत्य का काव्यों में चमत्कारिक वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, मणिक्कवाचकर ने तिरूवचकम म कहा है कि 'आओ हम उस नर्तक की स्तृति करें जो तिल्लई के कक्ष में अग्नि के साथ नृत्य करते हैं, जो धरती और अन्य सभी कुछ के सृजन और संहार की क्रीड़ा करते हैं।'

निष्कर्ष

पूर्व मध्यकाल का राजनीतिक इतिहास, उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में राज्य व्यवस्था के अभ्युदय और विकास के द्वारा रेखांकित है। ब्राह्मणों को दिए जाने वाले भूमि अनुदानों ने राजनीतिक शक्तियों को वैधानिकता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा इनका कृषि–संबंधों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में कृषि का विस्तार हुआ तथा ग्रामीण समुदाय का अधिकाधिक स्तरीकरण हुआ। यह नगरीकरण के पतन का काल नहीं था। दक्षिण भारत के संदर्भ में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जहां नगरीय शिल्प, नगर, व्यापार तथा श्रेणी संगठन पूर्ण रूप से पल्लवित–पुष्पित हुए। चीन तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ व्यापार में बृहद् विकास हुआ। भक्ति मार्ग की उपासना की लोकप्रियता इस काल के धार्मिक जीवन और दर्शन की विशेषता बनी। मंदिर न केवल आध्यात्मिक व धार्मिक जीवन के केंद्र थे, बल्कि नगरीय केंद्रों और राजनीतिक प्रतीकों के रूप में भी इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। जिस स्तर का संरक्षण इन्हें प्राप्त था, उनके कारण से समाज के विविध वर्गो की आकांक्षा

और गतिविधियों का केंद्र बन गए। सांस्कृतिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषा में व्यापक लेखन कार्यो को भी रखा जा सकता है। मंदिर स्थापत्य तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिष्करण और अलंकरण देखा गया तथा क्षेत्रीय शैलियों का स्वतंत्र विकास हुआ। 600–1200 सा. सं. के बीच की शताब्दियों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर चल रही गतिविधियों के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय प्रतिमानों का निर्माण संभव हो सका।

संदर्भ सूची

1. अब्राहम, मीरा, 1988ः टू मिडाइवल मर्चेन्ट गाइड और ऑफ साउथ इंडिया, नई दिल्ली, मनोहर प्रकाशन
2. बरकसन, कार्मेल, 1992ः एलोरा कान्सेप्ट एंड स्टाइलः नई दिल्ली, अनिमव पब्लिकेशन
3. भट्टाचार्य, एन. एल. 1974ः हिस्ट्रो ऑफ सकता रिजन, नई दिल्ली, मनोहर लाल प्रकाशन
4. चक्रवर्ती, कुनाल, 2001ः रिलिजियस प्रोसेस मेकिंग ऑफ ए रिजनल इंडिसनः दिल्ली ऑक्सफोर्ड प्रकाशन
5. चंपालक्ष्मी, आर. 1996ः इेड, आइडियोलॉजी एंड अर्बनाइजेशन ऑफ इंडिया 30 BC to AD 1300 देहली ऑक्सफोर्ड प्रकाशन
6. चटोपाध्याय, बी.डी. 1997ः द मेकिंग ऑफ अर्ली मेडाइवल इंडिया, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
7. चौधरी, के. एन.ः इेड एंड सिविलाइजेशन इन द इंडियन ऑसनः एन ईकोनोमिक हिस्ट्री फ्रीम द राइज ऑफ इस्लाम to 1750, नई दिल्ली मनोहरलाल प्रकाशन
8. दहेजिया, विद्या, 1988ः स्लेव्स ऑफ लार्डः द पाथ ऑफ द तमिल सेन्ट, नई दिल्ली, मुंशीराम प्रकाशन
9. देवाहुति, डी. 1983ः हर्षाः ए पोलिटिकल स्टडी 2th इंडियन, दिल्ली ऑक्सफोर्ड प्रकाशन